B.A. PART-I [Sl]

1.

हिन्दी (प्रतिष्ठा) द्वितीय पत्र
मध्ययुगीन इतिहास एवं काव्य

प्रश्न-2. रीतिकाल का प्रवर्तक

उत्तर- हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के प्रवर्तक का श्रेय किसे है, यह एक विवादास्पद प्रश्न है, क्योंकि कुछ विद्वान आचार्य केशवदास को रीतिकाल का प्रवर्तक स्वीकार करते हैं, तो कुछ अन्य विद्वान चिंतामणि को रीतिकाल का प्रवर्तक मानते हैं। वस्तुतः हिन्दी साहित्य में रीति-ग्रंथों का सूत्रपात भक्तिकाल के अन्तिम चरण में हो गया था। इस परम्परा का सर्वप्रथम ग्रंथ कृपाराम कृत 'हित तरंगिणी' है जिसकी रचना संवत 1598 वि० में की गयी थी। इसका मूल आधार भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र एवं भानुदत्त रचित रस मंजरी नामक ग्रंथ है। नायिका भेद से सम्बन्धित तीन प्रमुख ग्रंथ नंददास कृत 'रसमंजरी', मोहन लाल कृत 'श्रृंगार सागर' और रहीम कृत 'बरवै-नायिका भेद' भी भक्तिकाल में ही रचे गये। भक्त प्रवर सूरदास ने भी सूरसागर एवं साहित्य लहरी में यत्किंचित नायिका भेद एवं चित्रालंकारों का निरूपण करते हुए रीति की प्रवृत्ति का परिचय दिया। इनके अतिरिक्त करनेस कवि ने अलंकारों पर तीन ग्रंथों की रचना की — कर्णाभरण भूषण, श्रुति भूषण और भूप भूषण।

निःसंदेह केशवदास से पूर्व इन रीति-ग्रंथों की रचना हो चुकी थी, पर काव्य रीति का सम्यक समावेश इन ग्रंथों में नहीं है। इनके रचयिताओं ने काव्यांगों

P.T.O

2.

का निरूपण एवं विश्लेषण सूक्ष्म रीति से नहीं किया, साथ ही इनकी दृष्टि भी किसी एक काव्यांग पर ही सीमित रही। किसी ने नायिका भेद की ही चर्चा की, तो किसी ने केवल अलंकार निरूपण पर ही दृष्टि केन्द्रित की। परिमाण और गुणवत्ता दोनों ही दृष्टियों से भक्ति काल में रचित ये रीति-ग्रंथ अपना विशेष महत्व नहीं रखते। वस्तुतः इन रीति-ग्रंथों में काव्यशास्त्र का उतना विस्तृत विवेचन नहीं है, जितना केशवदास कृत 'कविप्रिया' और 'रसिक प्रिया' नामक रीति-ग्रंथों में मिलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है — "अब तक किसी कवि ने संस्कृत साहित्यशास्त्र में निरूपित काव्यांगों का पूरा परिचय नहीं कराया था। यह काम केशवदास जी ने किया।" यही नहीं एक अन्य स्थल पर वे केशव के सम्बन्ध में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं — "केशव की रचना में सूर, तुलसी आदि की सी सरसता और तन्मयता चाहे न हो, पर काव्यांगों का विस्तृत परिचय कराकर उन्होंने आगे के लिए मार्ग खोला। ..... इसमें संदेह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया।" इतना होने पर भी शुक्ल जी केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक स्वीकार नहीं करते।

आचार्य केशवदास को रीतिकाल का प्रवर्तक मानने वालों में प्रमुख हैं — आचार्य श्याम सुंदर दास एवं डॉ० नगेन्द्र।

P.T.O

इन विद्वानों के मतों को यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। आचार्य श्याम सुंदर दास ने केशव को रीतिकाल का 'आदि आचार्य' मानते हुए लिखा है — "यद्यपि समय विभाग के अनुसार केशव भक्तिकाल में पड़ते हैं और गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन होने के कारण और रामचन्द्रिका आदि ग्रंथ लिखने के कारण वे कोरे रीतिवादी नहीं कहे जा सकते, परन्तु उन पर पिछले संस्कृत साहित्य का इतना प्रभाव पड़ा था कि अपने काल की हिन्दी काव्य धारा से पृथक् होकर वे चमत्कारवादी हो गये और हिन्दी में रीति-ग्रंथों की परम्परा के आदि आचार्य कहलाये"।

डॉ० नगेन्द्र भी केशव को ही हिन्दी में रीति-ग्रंथों की परम्परा का प्रवर्तक स्वीकार करते हैं। उनका मत है — "यदि हम अपनी दृष्टि सीमित कर लें और हिन्दी काव्यशास्त्र की परम्परा में ही केशव के आचार्यत्व का विचार करें तो केशव का महत्व असंदिग्ध है। उन्हें हिन्दी काव्यशास्त्र का प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त है। हिन्दी के उस व्यापक युग के प्रवर्तक होने का श्रेय न तो केशव के किसी पूर्ववर्ती कवि को दिया जा सकता है और न ही परवर्ती को"।

केशवदास ने हिन्दी कवियों के समक्ष काव्य-रचना का एक नया मार्ग खोला। अपने रीति-ग्रंथों रसिक प्रिया और कविप्रिया में उन्होंने काव्यशास्त्र के सभी अंगों पर प्रकाश डाला। भाषा का कार्य

P.T.O.

4.

कवि की योग्यता, काव्य रचना के विविध रूप, काव्य प्रयोजन, काव्य तत्व, काव्य दोष, अलंकार, रस, वृत्ति आदि विषयों पर उन्होंने मौलिक ढंग से विचार किया है। वे काव्य में अलंकारों का स्थान प्रधान समझने वाले चमत्कारवादी कवि थे और यह मानते थे कि —

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न विराजई कविता बनिता मित्त।

'अलंकार' शब्द का प्रयोग इन्होंने व्यापक अर्थ में किया है और रस, रीति, ध्वनि आदि सभी काव्यांगों को अलंकार के ही अंतर्गत माना है। इनका अलंकार निरूपण दण्डी के काव्यादर्श, जयदेव कृत चंद्रलोक तथा अमेर रचित काव्य कल्पलता वृत्ति के आधार पर किया गया है। आचार्य शुक्ल ने केशव के अलंकार निरूपण में मौलिकता का अभाव देखते हुए लिखा है — "इन ग्रंथों में केशव का अपना विवेचन कहीं नहीं दिखायी पड़ता। सारी सामग्री कई संस्कृत ग्रंथों से ली हुई मिलती है"। केशव का रस विवेचन भी तर्कपूर्ण एवं प्रभावशाली नहीं है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अनेक तर्कों के आधार पर केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक न मानकर आचार्य चिंतामणि त्रिपाठी को रीतिकाल का प्रवर्तक स्वीकार किया है। उनका सबसे प्रबल तर्क इस सम्बन्ध में यह है कि प्रवर्तक हम उसे कहते हैं, जिसके अनुकरण पर आगे की परम्परा चलती है, अर्थात् प्रवर्तक किसी ऐसे सिद्धान्त या मार्ग

का प्रवर्तन करता है, जिसका अनुकरण आगे के लोग (कविगण) करते हैं। हिन्दी में जो सैकड़ों रीति ग्रंथ रीतिकाल में लिखे गये, वे केशव के बताये मार्ग पर नहीं अपितु चिंतामणि त्रिपाठी के द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर चले। शुक्ल जी के शब्दों में — "यह परम्परा केशव के दिखाये हुए पुराने आचार्यों (भामह, उद्भट आदि) के मार्ग पर न चलकर परवर्ती आचार्यों के परिष्कृत मार्ग पर चली, जिसमें अलंकार और अलंकार्य का भेद हो गया था।

काव्य के स्वरूप और अंगों के संबंध में हिन्दी के रीतिकार कवियों ने संस्कृत के परवर्ती ग्रंथों का मत ग्रहण किया"।

केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक न मानने के सम्बन्ध में शुक्ल जी का दूसरा तर्क यह है कि रीति-ग्रंथों की अखण्ड परम्परा केशव के उपरांत तत्काल नहीं चली, अपितु कविप्रिया के पचास वर्ष बाद उसकी अखंड परम्परा का प्रवर्तन हुआ। केशवदास ने रसिकप्रिया की रचना संवत 1648 वि. में तथा कविप्रिया की रचना संवत 1658 वि. में की। चिंतामणि का रचनाकाल संवत 1700 वि. के आसपास ठहरता है, क्योंकि उनका 'कविकुल कल्पतरु' नामक रीतिग्रंथ संवत 1707 में लिखा गया। इसके पश्चात ही हिन्दी के रीतिकाल में लगभग 200 वर्षों तक निरंतर रीतिग्रंथों की रचना होती रही, अतः शुक्ल जी चिंतामणि त्रिपाठी को रीतिकाल का प्रवर्तक स्वीकार करते हुए लिखते हैं — "केशवदास के उपरांत तत्काल रीति ग्रंथों की परम्परा

P.T.O

चली नहीं। कविप्रिया के 50 वर्ष पीछे उसकी अखण्ड परम्परा का आरंभ हुआ। ... हिन्दी रीति ग्रंथों की अखण्ड परम्परा चिंतामणि त्रिपाठी से चली। अतः रीतिकाल का आरंभ उन्हीं से मानना चाहिए।

आचार्य शुक्ल ने यह तो स्वीकार किया है कि काव्यरीति का सम्यक समावेश सबसे पहले आचार्य केशवदास ने ही किया, किंतु रीतिग्रन्थों की अविरल परम्परा केशव की कविप्रिया से न चलकर उसके पचास वर्ष बाद चली और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं। उनका तात्पर्य यह है कि परवर्ती रीतिग्रंथकारों ने केशव का अनुकरण नहीं किया अपितु चिंतामणि त्रिपाठी का अनुकरण किया। पहले कहा जा चुका है कि केशव का अलंकार निरूपण भामह, दण्डी के अनुरूप है जबकि हिन्दी के अधिकांश लक्षण ग्रंथकारों का अलंकार निरूपण जयदेव रचित 'चंद्रालोक' एवं अप्पयदीक्षित रचित 'कुवलयानंद' नामक संस्कृत ग्रंथों के आधार पर किया गया है। चिंतामणि त्रिपाठी ने भी इन्हीं ग्रंथों का आधार अलंकार विवेचन के लिए ग्रहण किया है, इसलिए शुक्ल जी परवर्ती रीतिग्रंथकारों को चिंतामणि की परम्परा में स्वीकार करते हैं, केशव की परम्परा में नहीं।

शुक्ल जी ने समय विभाग की दृष्टि से केशव को भक्तिकाल में स्थान दिया है, क्योंकि उनका काल संवत

P.T.O

1618 से संवत 1678 वि० माना गया है, जबकि रीतिकाल का प्रारंभ संवत 1700 विक्रमी से हुआ, अत: वे रीतिकाल के प्रवर्तक नहीं माने जा सकते। किन्तु उनके इस मत का खण्डन आचार्य श्याम सुंदर दास ने यह कहते हुए किया, "समय विभाग के अनुसार केशव भले ही भक्तिकाल के कवि हो, किन्तु अपने काल की काव्यधारा से पृथक होकर उन्होंने रीतिग्रन्थों का प्रणयन किया, अत: वे रीति-परम्परा के आदि-आचार्य हैं"।

~~केशवदास~~

केशवकृत कविप्रिया में अलंकारों का और रसिकप्रिया में रस का विवेचन प्रमुख रूप से किया गया है। वे अलंकारवादी आचार्य थे, अत: उनका दृष्टिकोण एकांगी था, किन्तु इसके कारण उन्हें रीति-ग्रन्थों के प्रवर्तक होने का श्रेय देने से वंचित नहीं किया जा सकता। केशव के बाद पचास वर्षों तक कोई रीति-ग्रंथ नहीं लिखा गया, इसके लिए भी वे उत्तरदायी नहीं हैं। रही बात केशव के आदर्श का अनुकरण करने की, इस संबंध में भी संस्कृत काव्यशास्त्र का उदाहरण लिया जा सकता है। आचार्य मम्मट से पूर्व संस्कृत में अनेक आचार्य हुए किन्तु परवर्ती आचार्यों ने मम्मट के समन्वयात्मक दृष्टिकोण का ही अनुसरण किया, तो इससे क्या मम्मट को संस्कृत का आदि-आचार्य मान लेंगे? परवर्ती रीतिकालीन कवियों ने केशव का स्मरण श्रद्धा पूर्वक किया है।

P.T.O

भिखारी दास एवं देव ने उन्हें आदर दिया है जबकि चिंतामणि के प्रति इस प्रकार का दृष्टिकोण परवर्ती कवियों का नहीं रहा। केशव का व्यक्तित्व बहुमुखी था। एक ओर तो उन्होंने युगानुरूप भक्ति भावना से ओत प्रोत रामचंद्रिका लिखकर रामभक्त कवियों में स्थान प्राप्त किया, तो दूसरी ओर वीरगाथा परम्परा में 'वीरसिंह देव चरित' एवं 'जहाँगीर जस चंद्रिका' जैसे ग्रंथ लिखे, साथ ही कविप्रिया एवं रसिकप्रिया जैसे रीति-ग्रंथ लिखकर रीति-परम्परा का प्रवर्तन किया।

चिंतामणि ने काव्यशास्त्र सम्बन्धी चार ग्रंथों की रचना की — रसविलास, शृंगार मंजरी, छंद विचार और कविकुल कल्पतरु। इन ग्रंथों में काव्यशास्त्र को सरल और सुबोध रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके बाद हिन्दी में लक्षण-ग्रंथों की भरमार-सी होने लगी।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि रीतिकाल के प्रथम आचार्य तो चिंतामणि त्रिपाठी हैं, जिनके अनुकरण पर परवर्ती रीति-ग्रंथकारों ने लक्षण-ग्रंथों की रचना की, किन्तु हिन्दी में रीति-परम्परा का प्रवर्तन करने का श्रेय केशव को ही दिया जाना चाहिए। उनके द्वारा रचित कविप्रिया एवं रसिकप्रिया हिन्दी के प्रौढ़ लक्षण ग्रंथ हैं, जिनमें सर्वप्रथम काव्य-रीति का सम्यक समावेश किया गया है। आचार्य शुक्ल ने भी

9.

भले ही केशव को रीतिकाल का प्रवर्तक न माना हो किन्तु वे उन्हें हिन्दी रीति परम्परा का आदि-आचार्य तो मानते ही हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्नावली

प्रश्न- 1. रीतिकाल का प्रवर्तक कौन है – केशव या चिंतामणि? अपने कथन के समर्थन में पुष्ट तर्क भी दीजिए।

प्रश्न- 2. रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय आज किसे देना चाहिए और क्यों?

प्रश्न- 3. रीतिकाल के प्रवर्तन पर विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा करते हुए अपना मत दीजिए।

प्रश्न- 4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रीतिकाल का प्रवर्तक किसे मानते हैं और क्यों? सतर्क उत्तर दीजिए।

पता:-
S/o समदर्शी कुमार
हिन्दी विभाग-SRAPC
मोबाइल नं: 7909046087
दिनांक 18.01.2022